हिन्दी साहित्य में सामाजिक समस्याओं का अध्ययन

डॉ सुमन बाला, सहायक आचार्या (हिंदी), सोभासरिया महाविद्यालय, सीकर

सार

साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य की यही दर्पणधर्मिता किसी लेखक के कृतिगत युग–चित्रण का मूलाधार हुआ करती है। आधुनिक साहित्य की समीक्षा में प्रायः आधुनिकता बोध, युग–बोध, युग–चित्रण, युग–चेतना, समकालीनता, समकालीन बोध, समसामयिकता इतयादि शब्दों का प्रचुर प्रयोग देखने को मिलता है। सच तो यह है कि सभी शब्द पर्यायवाची या समानार्थक नहीं हैं। साहित्य, विशेषतः कथा–साहित्य, नाट्य–साहित्य की आलोचना करते समय जिन पर ंपरागत तत्त्वों का आश्रय ग्रहण किया जाता है, उनमें देशकाल और वातावरण वाले तत्त्व का प्रत्यक्ष संबंध हमें इसी 'युगबोध' में दिखाई देता है।

भूमिका

कई शताब्दियों के पीछे, महाकाव्य, कविता, नाटक, लघु कथाएँ और दंतकथाएँ भारतीय साहित्यिक परिदृश्य पर हावी थीं। कहानी कहने और कला–रूप के माध्यम के रूप में उपन्यास अनिवार्य रूप से पश्चिम का है और काल्पनिक लेखन की एक परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है जो कहानी कहने की भारत की समय–सम्मानित परंपरा से बिल्कुल अलग है जो अनिवार्य रूप से एक मौखिक है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में साहित्यिक शैली के रूप में उपन्यास भारत में आया। यह हमें एक जीवित दुनिया से परिचित कराने का एक प्रभावी माध्यम हैय कुछ मायनों में दुनिया के सदृश, हम रहते हैं, लेकिन अपने परिवार, समाज और राज्य के साथ मनुष्य के संबंधों की सामाजिक दुनिया को फिर से बनाने के लिए अपनी खुद की एक वैयक्तिकता के साथ।

त्रिवेणी प्रसाद त्रिपाठी जी द्वारा लिखित उपन्यास "श्मशान की राख" (2019)

मनोहर इस उपन्यास का एक पात्र है, जो अपनी पत्नी रमिया और बेटी नीरू के साथ रहता है। मनोहर दलित वर्ग से है। दलित वर्ग हमारे देश में आज भी उपेक्षित है। भले ही हम राजनीति में उन्हें अपनी गोष्ठी में शामिल करते हों, पर वह सिर्फ वोट की राजनीति के लिये। सत्य तो यही है कि हम भीतर से कुछ और हैं और बाहर से कुछ और। कुर्सी मिलने के बाद हम उन लोगों को भूल जाते हैं, जिनके दरवाजे पर हम कुर्सी मिलने से पहले जाते हैं। शायद कुर्सी का असर ही ऐसा है ''प्रभुता बधिर न काँहिं ।

आज हम इक्कीसवीं सदी में पहुंच चुके हैं। हमने सूचना–प्रद्योगिकी विज्ञान और न जाने किन–किन क्षेत्रों में विश्व स्तरीय सफलता प्राप्त की है। शायद हम अपनी सफलता के मद में अपनी धरती छोड़ चुके हैं, और अपनी सफलता का परचम आसमान से दिखलाना चाहते है। पर यह तो सफलता न हुई, अहं हुआ, अपनो को नीचे छोड़ कर।

सफलता तो तभी है जब हम अपनी धरती पर वसने वाले समाज के सभी तवकों को साथ लेकर ऊपर उड़ें। पर यह हो भी कैसे सकता है ? हमने गुरूजनों की वाणी सुनना बंद कर दिया, उनके द्वारा प्रणीत साहित्य को पढ़ना बंद कर दिया है, जिसके माध्यम से ही हम प्रेम, सदयता, आनंद और मिल कर चलने की शिक्षा पा सकते हैं। आज हमें आवश्यकता है निष्कपट होने की, जियो और जीने दो की नीति पर । जो सबल हैं उन्हें नीचे देखकर उन निस्सहायों को ऊपर की ओर खींचना होगा, ताकि हम सभी समानता का भान कर सकें और तभी हम सच्चे समाजवाद का गठन करने की अनुभूति कर सकेंगे।

सिधपुर की भगतणें, लक्ष्मी शर्मा (2010)

लक्ष्मी शर्मा के उपन्यास सिधपुर की भगतणें में गहराई, रोचकता और पठनीयता सभी कुछ है। उपन्यास अपनी कहानी के जरिए आपको उन फेमिनिस्ट महिलाओं से मिलवाता चलता है, जिनमें से कुछ तो पढ़ी–लिखी भी नहीं हैं, पर जिन्होंने फेमिनिज्म को अपने जीवन में उतार लिया है। बिना किसी शोशेबाजी और दिखावे के खुद को सशक्त तरीके से जिया। ये आज की महिला को चकित कर देनेवाली महिलाएं हैं, जो अपने अस्तित्व और आत्मबल से पूरी तरह परिचित हैं। इनसे मिलकर आपको पता चलता है कि वाकई फेमिनिज़्म होता क्या है। लक्ष्मी शर्मा एक सशक्त और रोचक उपन्यास रचने के लिए बधाई की पात्र हैं।

एक महिला ने दूसरी महिला के जीवन–संघर्ष को जिस कौशल से इस उपन्यास में पिरोया है, वह अद्‌भुत है। इस उपन्यास को पढ़ते हुए आपका मन बेचौन हो उठेगा। राजस्थान के सुदूर गांव की पृष्ठभूमि में रचे गए इस पूरे उपन्यास के केंद्र में रही भजन मामी अनपढ़ होकर भी तमाम लालसाओं से मुक्त और महिलाओं की हर तरह की स्वतंत्रता की पैरोकार हैं। यहां तीन महिलाओं की आजादी और आत्मनिर्भर बनने की दास्तान बहुत ही रोचक ढंग से लक्ष्मी शर्मा ने कही है। मेरे अनुसार यह उपन्यास पठनीय होने के साथ ही साथ कालजयी भी है।

भगतणें लेखक का गढ़ा हुआ एक रूपक है, चरित्रों की एक श्रृंखला को उनकी ठोस पहचान से कुछ लाक्षणिकताओं के आधार पर एक भिन्न छवि में विस्थापित करने का लेखकीय उपक्रम । लेखक ने प्रथम पुरुष के निजी अनुभव की शैली में सिधपुर गांव में अपनी नानी के घर की स्त्रियों की एक ऐसी श्रृंखला की कहानी कही है जो इसके केंद्रीय चरित्र भजन मामी के ही कुछ और रूपों, ललिता मौसी, गुलाब मामी की दमित भावनाओं से होती हुई बिल्कुल नई पीढ़ी की सौभाग्य के जरिये जैसे अपनी मुक्ति का, स्वातंर्त्य से जुड़े मोक्ष का, स्वछंद की प्राप्ति के उद्वेलित आनंद का प्रसाद पाती है ।

ननिहाल की स्त्रियों की कल्पना से हमें हमेशा गैब्रियल गार्सिया मार्केस के जीवन की कहानी की याद आ जाती है जिसमें उन्होंने अपने पूरे बचपन और किशोर वय को नाना के घर की स्त्रियों के साथ जीया था । लेकिन मार्केस के ननिहाल पर समग्र रूप से उनके नाना के विराट पुरुष व्यक्तित्व की छाया थी । पर यहां नाना और सारे मामा लगभग दृश्य में ही नहीं है । जो है वह है नानी, मान–मर्यादाओं और जगत व्यवहार की जैसे अपनी ही एक स्वायत्त संहिता की मालकिन । भजन मामी नामर्द छोटे मामा केदार की पत्नी, जिसे, कहानी के अनुसार, कच्ची उम्र में ही नानी ने गांव के ठाकुर बीर जी का शिकार बना कर जैसे नाथ दिया था । सास की इस काली करतूत और पति की नामर्दगी के दंश ने इस गरीब परिवार से आई बेसहारा स्त्री से उसकी स्वाभाविक मानवीय गति को ही छीन लिया । यथार्थ के सत्य से मुकाबले के उस खास, बीर जी के औचक आक्रमण के क्षण ने भजन मामी को वह तिरछी नजर दी जिसके दरार पड़े आईने में उसे कोई भी प्रतिबिंब अपनी समग्र एकान्विति में नहीं दिखता है । वह जीवन के उन रहस्यों को देख पाती है, जिनमें स्त्री के शील अर्थात् उसकी गुलामी की संहिताएँ रची जाती है । वह एक कर्त्‌तव्य–परायण, पर उतनी ही तुनकमिजाज, सत्य के दंश से विक्षिप्त, जुनूनी स्त्री का रूप ले लेती है । उसके चित्त की, अर्थात् उसके प्रतीक जगत की अपनी एक अलग संहिता ही उसे संचालित करती है, वह नानी, बड़े मामा, बड़ी मामी और गांव के पूरे परिवेश में होते हुए भी उनसे स्वतंत्र अपने ही एक और संसार की मालकिन होती है । उसके इस अन्य संसार के दूसरे सदस्य हैं कृ गांव के मसान से लगे शिव मंदिर में धूनी रमाएं बैठी मद्रासिन ललिता मौसी, जिसे वहां जमने में हवेली वालों की मदद और भजन मामी और उनके पति की भी सहानुभूति मिली थी और गुलाब, गौना के पहले ही गुजर चुके सबसे बड़े मामा की परित्यक्त विधवा, जो

सिधपुर से तीन कोस दूर पाटण में भोमिया जी के थान पर महंत के साथ घर बनाए हुए हैं, पर सिधपुर की हवेली से मिली सती की पातड़ी के डोर को जीवन भर तोड़ नहीं पाई है ।

फसक, राकेश तिवारी (2017)

फसक पहाड़ी लोगों के जीवन के ताने–बाने को बुनता हुआ सामाजिक उपन्यास है। यह हमारे सामने बड़े दिलचस्प अंदाज में कई स्तर पर हमारे समाज को जस का तस रख देता है। फिर चाहे बात लोगों के बढ़ा–चढ़ाकर बातें पेश करने की हो, अफवाहें फैलाने की हो, राजनीति की हो, साधुओं की हो या फिर भोले–भाले अनपढ़ से लोगों के तंत्र–मंत्र में विश्वास करने की।

यह उपन्यास तकनीक को अपनाते, उसमें पारंगत और उसे अपनाने के लिए लालायित रहते युवाओं और अधेड़ों के साथ–साथ उसे न अपना पानेवाले अधेड़ों और बुजुर्गों के बीच मौजूद विसंगतियों को मजेदार अंदाज में मिलवाता है। उपन्यास में जगह–जगह किया गया स्थितिजन्य व्यंग्य और परिहास गुदगुदाता भी है।

फसक हमारे दौर की सच्चाई से साक्षात्कार करानेवाली एक ऐसी कृति है, जिससे जुड़ने के बाद पाठक बंधता जाता है और एक बार इसे पढ़ना शुरू करने के बाद ख□त्म किए बगैर रुकना कठिन हो जाता है। इसमें रचा गया समाज हमारे समय की ही जीती–जागती तस्वीर है। यहां अच्छे दिन के नाम पर अफवाह, अंधविश्वास और फिरकापरस्ती के दिन लौट आए हैं। बचवाली नामक पहाड़ी कस्बे के बहाने हमारे दौर से साक्षात्कार कराता यह उपन्यास तेजू, पुष्पा, चन्दू पाण्डेय, नन्नू महाराज इत्यादि पात्रों के जरिए हमारी दुनिया का एक नायाब परिदृश्य रचता है। यह हमारे आसपास की ही दुनिया है, जिसे हम अख□बारों, न्यूज चौनलों और अपने गली–मोहल्लों में रोज–रोज देखते तो हैं, पर इन पर टिकते नहीं हैं। लेखक ने इन सभी बिखरे हुए बिंदुओं को जोड़कर एक मुकम्मल तस्वीर उभारने की सफल कोशिश की है। विषयवस्तु और कहन दोनों ही दृष्टि से यह कृति रोचक और पठनीय बन पड़ी है।

फसक' उत्तर–सत्य वाले इस दौर की एक जीती–जागती तस्वीर है, जहां 'अच्छे दिन' के नाम पर अफवाह, अंधविश्वास और फिरकापरस्ती के दिन फिर गए हैं। तथ्य, तर्क–विवेक और वैज्ञानिक नजरिए के प्रति आकर्षण का अल्पकालिक उभार अपने उतार पर है।

उन गिरोहों की चांदी है, जिनके पासयभावनाएं मथने वाली मथानियांय हैं और एक नया सार्वजनिक दायरा रचते फेसबुक, व्हाट्सएप जैसे द्रुत माध्यमों को भी उल्टी गंगा बहाने के अभियान में जोत दिया गया है। बचवाली नामक पहाड़ी कस्बे की जमीन पर ऐसे दौर का साक्षात्कार करता यह वही दुनिया है जिसे हम अखबारों, न्यूज चौनलों और अपने गली–मोहल्लों में रोज देखते हैं, पर इन सभी ठिकानों पर बिखरे हुए बिंदुओं को जोड़कर जब राकेश एक मुकम्मल तस्वीर उभारते हैं, तो हमें अहसास होता है कि इन बिंदुओं की योजक–रेखाएं अभी तक हमारी निगाहों से ओझल थीं। अचरज नहीं कि इस तस्वीर को देखने के बाद, उपन्यास के अंत में आए लालबुझक्कड़ के ऐलान को हम अपने ही अंदर से फूटते शब्दों की तरह सुनते हैं। समय की नब्ज पर उंगली होते हुए भी फसक में ज्वलंत दस्तावेज रच देने का बहुप्रतिष्ठित लोभ इतना हावी नहीं है कि कि रसागोई पृष्ठभूमि में चली जाए। फसकियों (गपोड़ियों) के इलाके से आनेवाले राकेश तिवारी किस्सा कहना जानते हैं। जिन लोगों ने कठपुतली थक गईयमुर्गीखाने की औरतें,यमुकुटधारी चूहाय जैसी उनकी कहानियां पढ़ी हैं, उन्हें पता है कि इस कथाकार की पकड़ से न समय की नब्ज छूटती है, न पाठक की।

राकेश की खास बात है इस चीज की समझ, कि वाचक की बंद मुट्ठी लाख की होती है और खुलकर भी खाक की नहीं होती, बशर्ते सही समय पर खोली जाए। थोड़ा बताना, थोड़ा छुपा कर रखना, और ऐन उस वक्त उद्घाटित करना, जब आपका कुतूहल सब्र की सीमा लांघने पर

हो – यह उनकी कियस्सागोई का गुर है। इसके साथ चुहलबाज भाषा और व्यंग्यगर्भित कथा–स्थितियां मिलकर यह सुनिश्चित करती हैं कि एक बार उठाने के बाद आप उपन्यास को पूरा पढ़कर ही दम लें।

मोहनदास नैमिशराय जी द्वारा लिखित उपन्यास "जख्म हमारे" (2011)

सुप्रसिद्ध दलित लेखक और चिन्तक मोहनदास नैमिशराय का यह उपन्यास एक अति संवेदनशील कथाकृति होने के साथ–साथ समकालीन इतिहास का एक मार्मिक दस्तावेज भी है। इसके माध्यम से लेखक ने गुजरात की उस महाविभीषिका का प्रभावशाली चित्रण किया है जिसकी ज्वाला में हजारों जिन्दगियाँ झुलस गयीं। कथा की शुरुआत होती है भूकम्प से, जो धर्मों और जातियों के बीच विभेद नहीं करता। पर सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि अलग–अलग होने से समाज के विभिन्न वर्ग अलग–अलग तरीके से प्रभावित होते हैं मानो दर्द भी जातियों में बँटा होता हो। वर्ग विभेद की यही स्थिति भूकम्प राहत के कार्यक्रम में भी दिखाई पड़ती है। यहाँ भी दलित दलित ही रहता है – समाज का एक कुचला हुआ नायक, जिसके साथ पशुओं की तरह सलूक किया जा सकता है। लेकिन गुजरात के जन जीवन में एक और भूकम्प आने को है, जिसमें इनसानियत के सारे मूल्य साम्प्रदायिक विद्वेष की भेंट चढ़ जाते हैं। गोधरा कांड को बहाना बना कर मुस्लिम अल्पसंख्यकों के साथ जैसी पैशाचिक क्रूरता दिखाई जाती है, उसका दूसरा उदाहरण खोज पाना मुश्किल है। 'जख्म हमारे' पहला उपन्यास है जिसमें गुजरात के साम्प्रदायिक तांडव के बारीक विवरण इतने सक्षम रूप से उपलब्ध होते हैं। लेकिन अपने मूल रूप में यह दलित पीड़ा का लोमहर्षक आख्यान है, जिसमें हम पाते हैं कि सिर्फ दलित परिवार में जन्म लेने के कारण देश के एक बड़े हिस्से को लगातार अपमानित तथा प्रताड़ित होना पड़ता है। इससे भी आगे, यह दलित–मुस्लिम एकता की खोज की कहानी है, जो दूषित सवर्ण हिन्दू मानसिकता की काट बन सकती है। इस एकता को सम्भव बनाने के लिए जिस साहस और संघर्ष की आवश्यकता है, उसका सजीव वर्णन कर मोहनदास नैमिशराय ने यह भी संकेत कर दिया है कि रास्ता किधर है। हमें पूरा विश्वास है, यह महत्त्वपूर्ण कृति न केवल दलित साहित्य की अमूल्य निधि साबित होगी, बल्कि साम्प्रदायिकता–विरोधी शक्तियों को ताकत भी प्रदान करेगी।

SHRADHA EDUCATIONAL ACADEMY

धुंधले अतीत की आहटें, गोपाल माथुर (2016)

धुंधले अतीत की आहटें को पढ़ते हुए यूं लगता है कि आप जिंदगी को गुनगुनाती हुई कोई शाइस्ता गजल पढ़ रहे हैं, जो रफ्ता–रफ्ता आपके दिलो–दिमाग को अपनी गिरफ्त में लेती जा रही है। और जब आप सिन्थिया के बारे में, उसके सच के बारे में जानते हैं तो उसकी पीड़ा अनायास आपकी आंखों के जरिए बहने को हो आती है। एक बार इस उपन्यास को पढ़ना शुरू करने के बाद यदि आप इसे बीच में कहीं छोड़कर उठें तो भी इसके पात्र जैसे आपको खींच ले जाते हैं अपनी दुनिया में। वे आपके दिल में घर बसाकर रहने लगते हैं। गोपाल माथुर के इस गजलनुमा उपन्यास को जरूर पढ़ा जाना चाहिए।

यह बीते समय के कुछ ऐसे अनुभवों को पुनर्जीवित करने की परिणति है, जो बीत कर भी लेखक के मानसपटल से मिट नहीं सका है। कहानी एक महिला की जिंदगी और उसकी दिनोंदिन की जद्दोजहद से रूबरू कराती है। गोपाल माथुर का किस्सा कहने का तरीका और विषय को रोचकता से प्रस्तुत करना उपन्यास और प्रभावी बनाता है।

यह उपन्यास पीठ पर भार सी ठिठकी सिसकती उदासियों की बानगी है। यहाँ उकेरे गए किरदार पाठक के मन में उतरकर उसके साथ चहलकदमी करने लगते हैं। किरदार यहाँ मात्र घटनाओं के हाथ की कठपुतली ना होकर स्मृतियों में उसी तरह ठिठके रह जाते हैं जैसे कि

बरसती बारिश के बाद पानी के चहबच्चे, जो किसी स्मृति का जीवंत दस्तावेज भर होते हैं। उपन्यास पढ़ते हुए कई बार ऐसा लगा है कि लेखक के ही साथ मेरा पाठक मन भी मेंगलोर के उस समुद्र और ग्रेनाइट की काली चट्टानों के बीच पहुँच गया है जहाँ नरेटर और सिन्थिया अपने अभिशप्त जीवन की जकड़न से बाहर आने का प्रयास कर रहे हैं।

किसी भी रचना की सफलता पाठक से एकाकार होने से होती है। यह साफल्य अलग–अलग तंतुओं में नहीं वरन् समूचे संघटन विधान में जीवित रहता है। इसीलिए यहाँ भी जब हम एक तत्त्व को दूसरे से अलगाते हैं तो रचना का सौन्दर्य और संवेदना मुरझाने लगती है। भाषा, किरदार, कथातत्त्व, भाव संयोजन वे तत्त्व हैं जो किसी भी कलाकृति को स्वायत्त व विशिष्ट बनाते हैं। यहाँ सभी माध्यमों से ऐसे यथार्थ का गुम्फन है जो अतीत की छाँह में सरकता है।

उपन्यास में घटना बाहुल्य नहीं है ना ही किरदारों को बाहुबली भूमिका में दर्शाया गया है वरन् इसके उलट वे बेहद सादा हैं, बेहद आम। इतने सादा कि किरदार की गोल बिन्दी पर ठिठक कर समुद्र की नमी को महसूस किया जा सकता है। यहाँ दैनिक जीवन की मुस्कराहटें हैं, जान बूझ कर पूछे गए निरर्थक प्रश्न हैं जिनका प्रयोग हम और आप जीवन की अनेक असहज स्थितियों से बचने के लिए करते हैं।

जंगल के गीत, पंछियों की फुसफुसाहटों और अनाम खामोशियों के बीच यह उपन्यास अतीत का राग है जिसके दंश से किरदार विलग होना चाहते हैं। यह अतीत राग इतना प्रभावी है कि युगल के बीच चुकी हुई उपस्थितियाँ भी मुखर रहती हैं। सिन्थिया की हर याद में फिलिप जीवित है। समन्दर, चर्च, घर से लेकर बारिशों तक उसकी उपस्थिति इतनी मौजू है कि नायिका उससे चाहकर भी मुक्त नहीं हो पाती। यही बात कथानायक लेखक के साथ है, कभी तुलनात्मक दृष्टिकोण से तो कभी सौन्दर्य की बानगियों से संजना अनायास ही उसके समक्ष आ खड़ी होती है।

निष्कर्ष

साहित्य एक सशक्त माध्यम है जो समाज के हर पहलू को अभिव्यक्त कर सकता है। यह एक से अधिक बार साबित हो चुका है कि साहित्य का समाज से संबंध बेहद महत्वपूर्ण है और इस रिश्ते की जांच साहित्य के एक टुकड़े के लिए किसी की सौंदर्यवादी प्रतिक्रिया को व्यवस्थित और गहरा कर सकती है। एक रचनात्मक लेखक के पास एक समाजशास्त्री की धारणा और विश्लेषणात्मक दिमाग होता है जो मानव जीवन, समाज और सामाजिक व्यवस्था का सटीक रिकॉर्ड प्रदान करता है।

स्थानीय परिवेश के आधार पर दुनिया भर में साहित्य का विकास विविध और असमान रहा है। जब से मनुष्य ने साहित्यिक प्रलेखन के लिए जाना शुरू किया है, उसने अपने कच्चे माल के लिए समकालीन जीवन और सामाजिक इतिहास पर ध्यान आकर्षित किया है। इस प्रकार साहित्य के महान कार्य प्राचीन अतीत के लगभग सभी ऐतिहासिक विवरणों के लिए हमारे सबसे विश्वसनीय स्रोत रहे हैं।

संदर्भ सूची

1. अमिताभ, वेदप्रकाश : 'दुख के पल से', नमन प्रकाशन, 4378/4बी, अंसारी रोड़, नई दिल्ली–2, प्रथम संस्करण 2006
2. कालिया, ममता : 'दस प्रतिनिधि कहानियाँ', किताबघर प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली–110002
3. कौल, संजना : 'काठ की मछलियाँ', युनिस्टार बुक्स, प्रा० लि० चण्डीगढ़ संस्करण–2008
4. बनवासी, कैलास : 'बाजार में रामधन', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004

5. चक्रवती, परितोष : 'अँधेरा समुद्र', भारतीय ज्ञानपीठ, लोदी रोड, नई दिल्ली–110003, पहला संस्करण–2008
6. प्रत्यक्षा : 'जंगल का जादू तिल–तिल', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली–2008
7. पाठक, दिनेश : 'पारुल दी', भारतीय ज्ञानपीठ, लोदी रोड़, नई दिल्ली, पहला संस्करण–2004
8. पुष्पा, मैत्रेयी : 'चिन्हार', आर्य प्रकाशन मंडल, 221, सरस्वती भंडार, गांधीनगर, दिल्ली–110031, संस्करण 2009
9. पाण्डेय मनोज कुमार : 'शहतूत', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 2009
10. 'फिरोजपुरी', गोपाल कृष्ण वर्मा : 'मोम के रिश्ते', कल्पना प्रकाशन, बी–170, जहाँगीरपुरी, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2011